मोहम्मद जावेद

"बचपन की मेरी यादें इस किस्म की नहीं हैं जैसे कि किसी की होनी चाहिए"

आरंभ:

यह एक मिश्रित आबादी वाला गाँव था; हमें कभी यह अहसास नहीं हुआ था कि कौन हिंदू या सिख या मुसलमान है। शादियों में सारा गाँव शामिल होता था। अगर किसी की मौत हो जाती, तो पूरा गाँव शोक में डूब जाता। चाहे हिंदू हो या सिख, कोई फर्क नहीं पड़ता था।

अचानक, करीब एक साल के अंदर यह पागलपन शुरू हुआ। मुझे याद है कि लोग नारे लगाया करते थे; "पाकिस्तान का मतलब क्या, ला इलाहा इल-अल्लाह" *(पाकिस्तान का मतलब क्या?) (जहाँ सिर्फ एक खुदा हो)*। लोग बहस करते थे कांग्रेस को वोट देना है या फिर मुस्लिम लीग को। उस समय लोग इसका अर्थ नहीं समझ पाते थे। समुदायों और धर्मों के खिलाफ बहुत अफवाहें और नफरत फैलाई गई थी।

भारत का बँटवारा हो गया। यह तो किसी को भी नहीं मालूम कि ठीक कितने लोगों की मौत हुई लेकिन मरने वालों की संख्या लाखों में थी। किसी को भी कटघरे में खड़ा नहीं किया गया। यह सब लोगों ने नहीं किया था। यह तो राजनीतिक नेता थे जिन्होंने यह सब किया।

लोगों ने अपने घर-बार छोड़ दिए क्योंकि वे अपनी जान की सलामती के लिए डरे हुए थे और उन्हें कैम्पों में ले जाया जा रहा था। हमने पाकिस्तान जाने के लिए ढाई महीने तक सीलमपुर के एक कैम्प में इंतजार किया। हमें कभी भी अपने खाने या जानवरों के चारे की कोई समस्या नहीं हुई क्योंकि यह उन लोगों द्वारा लाया जाता था जो मुसलमान नहीं थे; वे सिख और हिंदू थे -- मेरे पिता के मित्र थे, जिन्होंने कैम्प में रहने के दौरान हमारी देखभाल की। मैंने बच्चों और बुजुर्गों को घास के सहारे जिंदा रहते हुए देखा। वह बहुत भयानक था -- बच्चे भूख से बिलख रहे थे लेकिन इसे खाने से इंकार कर देते थे। लेकिन आपको किसी न किसी चीज़ के सहारे तो रहना पड़ता है। वह बहुत भयानक वक्त था।

आखिरकार, उस कैम्प के पाकिस्तान जाने का वक्त आ गया। हमारी हिफाजत कर रहे सेना के लोगों ने बताया कि यह महज एक अस्थाई इंतजाम था क्योंकि कोई भी नहीं जाना चाहता था। हम एक दिन में 12-15 घंटे चलते और फिर रात के लिए पड़ाव डालते। लोग कैम्प में रहकर बहुत कमजोर हो गए थे क्योंकि उनके पास खाने के लिए पूरा खाना नहीं होता था... उनके लिए चलना और आगे बढ़ना मुश्किल हो गया था।

हमारे बीच ऐसे लोग भी थे जिन्होंने अपना ज्यादातर परिवार गंवा दिया था, जिनका कत्ल कर दिया गया था। मुझे एक औरत और उसके दो छोटे-छोटे बच्चों की याद है। लगभग 45 मील चल चुकने पर, तीसरी बार आगे बढ़ने के बाद, उसके पैर सूज गए थे और उसके पास ढंग के जूते भी नहीं थे और इस पर से उसे दो बच्चों को ढोना था। तीसरे दिन के बाद, वह दोनों बच्चों को नहीं ले जा सकी। एक दिन उसने एक बच्चे को सड़क के किनारे छोड़ दिया क्योंकि वह सिर्फ एक को ही उठाकर ले जा सकती थी। ऐसा दूसरी बहुत-सी औरतों और बच्चों के साथ हुआ क्योंकि वे चल नहीं सकते थे और उनके माता-पिता में उन्हें साथ ले जाने लायक ताकत नहीं थी। अगर आप धीमे पड़े, तो ज्यादा आशंका यही थी कि आपको मार दिया जाता।

हम एक गाँव में बस गए। आगे चलकर, सरकार ने हमें कुछ जमीन दी, जिसे हिंदू और सिख खाली करके गए थे। यह 1947 में हुआ। मेरे पिता की मृत्यु 1958 में हुई। तब तक वह अपने खुद के घर वापस जाने का इंतजार करते रहे। वह कहते : 'कोई मेरी जायदाद, मेरा घर, मेरी जमीन, सबकुछ ले ले, ऐसा बिल्कुल नहीं हो सकता।' (जारी....)
पढ़-लिखकर लोक सेवा में नौकरी करने के समय तक, मैं हिंदूओं और सिखों से नफरत के माहौल में पला-बढ़ा। मुझे भारत-पाकिस्तान व्यापार में पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व करने का दायित्व सौंपा गया था। पहली बार जब मैं अमृतसर गया, तो यह एकदम एक नई दुनिया थी। मैं हैरान था। लोगों ने -- हिंदूओं और सिखों ने, मेरा स्वागत किया। लोग मुझे अपने घरों में ले जाना चाहते थे और चाहते थे कि मैं वहाँ खाना खाऊँ और उनके परिवार के साथ वक्त गुजारूँ। पहले ही दिन मुझे जबर्दस्त झटका लगा था। मुझे पाकिस्तान में जो सिखाया गया था वह सच नहीं था। हिंदू और सिख दिल से चाहते थे कि वहाँ पाकिस्तान से लोग आएँ। मुझे नफरत का एक कतरा भी नजर नहीं आया। ऐसी ही मिलती-जुलती चीजें मैंने यहाँ भी देखीं। हिंदू, सिख और मुसलमानों में कोई फर्क नहीं है... खासकर पंजाबी लोग हमेशा साथ-साथ हैं।

"बचपन की मेरी यादें इस किस्म की नहीं हैं जैसे कि किसी की होनी चाहिए" (पंजाबी)। उन अनुभवों ने मुझे हर किसी के लिए बेहद सम्मान रखना सिखाया। मैं लोगों के लिए जी रहा हूँ और मुझे उम्मीद है कि आखिरी साँस तक लोगों के लिए ही जीता रहूँगा।

समाप्त